International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
ISSN -2393-8048, January-June 2022, Submitted in May 2022, iajesm2014@gmail.com

जैव विविधता का संरक्षण

Dr. Dinesh Kumar, Assistant Professor, Sant Prannath Parnami PG College, Padampur(Raj.)
Dr. Usha Sharma, Assistant Professor, Shiva College of Education, Lalgarh Jatan, Sri Ganganagar (Raj.)

परिचय

किसी भी देश की जैव विविधता के संरक्षण एवं वृद्धि के लिए जैव विविधता का सम्पुष्ट एवं व्यापक अध्ययन आवश्यक होता है क्योंकि किसी भी राष्ट्र की समृद्धि का निर्धारण वहॉ की जैव विविधता के आधार पर होता है।

जैव विविधताः अवधारणा एवं परिभाषा

जैव विविधता का सामान्य अर्थ होता है किसी भी विस्तृत क्षेत्र की पर्यावरणीय दशाओं में पौधों एवं जन्तुओं के समुदायों के जीवों की प्रजातियों की विविधता। उदाहरण के लिए उष्णकटिबन्धी वर्षा वन परिस्थितिक तंत्र, सवाना पारिस्थितिक तंत्र, शीतोष्ण घास प्रदेश पारिस्थितिक तंत्र, मानसूनी प्रदेश पारिस्थितिक तंत्र, टुण्ड्रा एवं टैगा पारिस्थितिक तंत्र की जैव विविधता। सागरीय पारिस्थितिक तंत्रों की जैव विविधता का भी पर्याप्त महत्व होता है। **जैव विविधता** शब्द का सर्वप्रथम उपयोग **वाल्टर जी. रोजेन** द्वारा सन् 1986 में किया गया। वास्तव में 'जैव विविधता' शब्द **'जीवीय विविधता'** का संक्षिप्त रूप है। 'जीवीय विविधता' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी प्रसिद्ध जीवविज्ञानी ई. लवज्वाय द्वारा सन् 1980 में किया गया था। आगे चलकर ई. ओ. विलसन ने 'जैव विविधता' शब्दावली का विश्वभर में व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया। उल्लेखनीय है कि 'जैव विविधता' को कई रूपों में निरूपित एंव परिभाषित किया गया है परन्तु जीन विविधता के तत्व, प्रजातियॉ एवं पारस्थितिक तंत्र जैव विविधता की सभी परिभाषाओं के क्रोड में परिलक्षित होते हैं, जैसा कि अधोलिखित परिभाषाओं से स्पष्ट होता है:

सी.जे. बैरो के अनुसार ''किसी निश्चित क्षेत्र (पारिस्थितिक तंत्र) की प्रत्येक प्रजाति में जननिक विषमता के साथ–साथ विभिन्न प्रजातियों की विविधता को जैव विविधता कहते है।''

डी. कैस्ट्री के अनुसार ''किसी निश्चित समय में किसी निश्चित स्थान के जीन, प्रजातियों एवं पारिस्थितिकीय विविधता के समुदाय एवं उनकी पारस्परिक क्रिया के सम्मिलित रूप को जैव विविधता कहते है।''

जैव–विविधता का महत्त्व– जैव–विविधता का मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैव–विविधता के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन असंभव है। जैव–विविधता के विभिन्न लाभ निम्नलिखित हैं–

1. जैव–विविधता भोजन, कपड़ा, लकड़ी, ईंधन तथा चारा की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। विभिन्न प्रकार की फसलें जैसे गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम), धान (ओराइजा सेटाइवा), जौ (हारडियम वलगेयर), मक्का (जिया मेज), ज्वार (सोरघम वलगेयर), बाजरा (पेनिसिटम टाईफाइडिस), रागी (इल्यूसिन कोरकेना), अरहर (कैजनस कैजान), चना (साइसर एरियन्टिनम), मसूर (लेन्स कुलिनेरिस) आदि से हमारी भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जबकि कपास (गासिपियम हरसुटम) जैसी फसल हमारे कपड़े की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। सागवान (टेक्टोना ग्रान्डिस), साल (शोरिया रोबस्टा), शीशम (डेलवर्जिया सिसू) आदि जैसे वृक्षों की प्रजातियाँ निर्माण कार्यों हेतु लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। बबूल (अकेसिया नाइलोटिका), शिरीष (एल्बिजिया लिबेक), सफेद शिरीष (एल्बिजिया प्रोसेरा), जामुन (साइजिजियम क्यूमिनाई), खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया), हल्दू (हेल्डिना कार्डिफोलिया), करंज (पानगैमिया पिन्नेटा) आदि वृक्षों की प्रजातियों से हमारी ईंधन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है

2 जैव–विविधता कृषि पैदावार बढ़ाने के साथ–साथ रोगरोधी तथा कीटरोधी फसलों की किस्मों के विकास में सहायक होती हैं। हरित क्रांति के लिये उत्तरदायी गेहूँ की बौनी किस्मों का विकास जापान में पाये जाने वाली नारीन–10 नामक गेहूँ की प्रजाति की मदद से किया गया था। इसी प्रकार धान की बौनी किस्मों का विकास ताइवान में पाये जाने वाली डी–जिओ–ऊ–जेन नामक धान की प्रजाति से किया गया था। सन 1970 के प्रारम्भिक वर्षों में विषाणु के संक्रमण से होने वाली धान की ग्रासी स्टन्ट नामक बीमारी के कारण एशिया महाद्वीप में 1,60,000 हेक्टेयर से भी ज्यादा फसल को नुकसान पहुँचाया था।

3. वानस्पतिक जैव–विविधता औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। एक अनुमान के अनुसार आज लगभग 30 प्रतिशत उपलब्ध औषधियों को उष्णकटिबंधीय वनस्पतियों से प्राप्त किया जाता है। उष्णकटिबंधीय शाकीय वनस्पति सदाबहार (कैथरेन्थस रोसियस) विनक्रिस्टीन तथा विनव्लास्टीन नामक क्षारों का स्रोत होता है जिनका उपयोग रक्त कैंसर के उपचार में होता है। सर्पगंधा (राओल्फिया सरपेन्टीना) पादप रेसर्पीन नामक महत्त्वपूर्ण क्षार का स्रोत होता है जिसका उपयोग उच्च–रक्तचाप के उपचार में किया जाता है। गुग्ल (कामीफेरा बिटाई) नामक पौधे से प्राप्त गोंद का उपयोग गठिया के इलाज में किया जाता है। सिनकोना (सिनकोना कैलिसिया) वृक्ष की छाल से प्राप्त कुनैन नामक क्षार का उपयोग मलेरिया ज्वर के उपचार में किया जाता है।
4. जैव–विविधता पर्यावरण प्रदूषण के निस्तारण में सहायक होती है। प्रदूषकों का विघटन तथा उनका अवशोषण कुछ पौधों की विशेषता होती है। सदाबहार (कैथरेन्थस रोसियस) नामक पौधे में ट्राइनाइट्रोटालुइन जैसे घातक विस्फोटक को विघटित करने की क्षमता होती है। सूक्ष्म–जीवों की विभिन्न प्रजातियाँ जहरीले बेकार पदार्थों के साफ–सफाई में सहायक होती हैं। सूक्ष्म–जीवों की स्यूडोमोनास प्यूटिडा तथा आर्थोबैक्टर विस्कोसा में औद्योगिक अपशिष्ट से विभिन्न प्रकार के भारी धातुओं को हटाने की क्षमता होती है।
5. जैव–विविधता में संपन्न वन पारितंत्र कार्बन डाइऑक्साइड के प्रमुख अवशोषक होते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड हरित गृह गैस है जो वैश्विक तपन के लिये उत्तरदायी है। उष्णकटिबंधीय वनविनाश के कारण आज वैश्विक तापमान में निरंतर वृद्धि हो रही है जिसके कारण भविष्य में वैश्विक जलवायु के अव्यवस्थित होने का खतरा दिनोंदिन बढ़ रहा है।
6. जैव–विविधत मृदा निर्माण के साथ–साथ उसके संरक्षण में भी सहायक होती है। जैव–विविधता मृदा संरचना को सुधारती है, जल–धारण क्षमता एवं पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाती है। जैव–विविधता जल संरक्षण में भी सहायक होती है क्योंकि यह जलीय चक्र को गतिमान रखती है। वानस्पतिक जैव–विविधता, भूमि में जल रिसाव को बढ़ावा देती है जिससे भूमिगत जलस्तर बना रहता है।
7. जैव–विविधता पोषक चक्र को गतिमान रखने में सहायक होती है। वह पोषक तत्वों की मुख्य अवशोषक तथा स्रोत होती है। मृदा की सूक्ष्मजीवी विविधता पौधों के मृत भाग तथा मृत जन्तुओं को विघटित कर पोषक तत्वों को मृदा में मुक्त कर देती है जिससे यह पोषक तत्व पुनः पौधों को प्राप्त होते हैं।

जैव–विविधता का क्षरण – पृथ्वी पर जैविक संसाधनों के क्षय को जैव विविधता क्षरण के नाम से जाना जाता है। पृथ्वी का जैविक धन जैव–विविधता लगभग 400 करोड़ वर्षों के विकास का परिणाम है। इस जैविक धन के निरंतर क्षय ने मनुष्य के अस्तित्व के लिये गम्भीर खतरा पैदा कर दिया है। दुनिया के विकासशील देशों में जैव–विविधता क्षरण

चिन्ता का विषय है। एशिया, मध्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका तथा अफ्रीका के देश जैव–विविधता संपन्न हैं जहाँ तमाम प्रकार के पौधों तथा जन्तुओं की प्रजातियाँ पायी जाती हैं। विडम्बना यह है कि अशिक्षा, गरीबी, वैज्ञानिक विकास का अभाव, जनसंख्या विस्फोट आदि ऐसे कारण हैं जो इन देशों में जैव–विविधता क्षरण के लिये जिम्मेदार हैं। दुनिया में कुल कितनी प्रजातियाँ हैं यह ज्ञात से परे है लेकिन एक अनुमान के अनुसार इनकी संख्या 30 लाख से 10 करोड़ के बीच है। दुनिया में 14,35,662 प्रजातियों की पहचान की गयी है। हालाँकि बहुत सी प्रजातियों की पहचान अभी भी होना बाकी है। पहचानी गई मुख्य प्रजातियों में 7,51,000 प्रजातियाँ कीटों की, 2,48,000 पौधों की, 2,81,000 जन्तुओं की, 68,000 कवकों की 26,000 शैवालों की, 4,800 जीवाणुओं की तथा 1,000 विषाणुओं की हैं। पारितंत्रों के क्षय के कारण लगभग 27,000 प्रजातियाँ प्रतिवर्ष विलुप्त हो रही हैं। इनमें से ज्यादातर उष्णकटिबंधीय छोटे जीव हैं। अगर जैव–विविधता क्षरण की वर्तमान दर कायम रही तो विश्व की एक–चौथाई प्रजातियों का अस्तित्व सन 2050 तक समाप्त हो जायेगा।

पृथ्वी के पूर्व के 50 करोड़ वर्ष के इतिहास में छः बड़ी विलुप्ति लहरों ने पहले ही दुनिया की बहुत सी प्रजातियों को समाप्त कर दिया जिनमें छिपकली परिवार के विशालकाय डायनासोर भी शामिल हैं। विलुप्ति लहरों के क्रमवार काल में पहला आर्डोविसियन काल (50 करोड़ वर्ष पूर्व), दूसरा डेवोनियन काल (40 करोड़ वर्ष पूर्व), तीसरा परमियन काल (25 करोड़ वर्ष पूर्व), चौथा ट्रायसिक काल (18 करोड़ वर्ष पूर्व) है। पाँचवा क्रिटेसियस काल (6. 5 करोड़ वर्ष पूर्व), छठवां प्लाइस्टोसीन काल (10 लाख वर्ष पूर्व) था। जुरासिक काल में पृथ्वी पर राज करने वाले विशाल जीव डायनासोर क्रिटेसियस काल में ही इस पृथ्वी से विलुप्त हो गये। विलुप्ति की छठवीं लहर में विशाल स्तनधारियों एवं पक्षियों की बहुत सी प्रजातियों का पृथ्वी से पतन हो गया। उक्त सभी छः विलुप्ति लहरों का प्रमुख कारण प्राकृतिक था जबकि सातवीं विलुप्ति का वर्तमान दौर मानव की विध्वंसक गतिविधियाँ हैं। उष्णकटिबंधीय वर्षा वन, जैव विविधता संपन्न होते हैं जिन्हें 'पृथ्वी का फेफड़ा' कहा जाता है क्योंकि ये ऑक्सीजन के प्रमुख उत्सर्जक तथा कार्बन डाइऑक्साइड के अवशोषक होते हैं। इनका विस्तार पृथ्वी की कुल 7 प्रतिशत भौगोलिक भूमि पर है। दुनिया की कुल 50 प्रतिशत पहचानी गई प्रजातियाँ इन्हीं वनों में पायी जाती हैं। चूँकि ज्यादातर वर्षा वन दुनिया के विकासशील देशों में पाये जाते हैं इसलिये जनसंख्या विस्फोट इन वनों के विनाश का प्रमुख कारण है। समय रहते अगर संरक्षण को नहीं अपनाया गया तो बहुत जल्द इनमें 90 प्रतिशत आवासों का विनाश होगा परिणामस्वरूप 15,000 से 50,000 प्रजातियों की क्षति प्रतिवर्ष होगी। उष्णकटिबंधीय वनविनाश आने वाले अगले 50 वर्षों में जैव–विविधता क्षरण का प्रमुख कारण होगा।

संपूर्ण विश्व में पौधों की लगभग 60,000 प्रजातियाँ तथा जन्तुओं की 2,000 प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर खड़ी हैं। यद्यपि इसमें से ज्यादातर प्रजातियाँ पौधों की हैं पर इसमें कुछ प्रजातियाँ जन्तुओं की भी हैं। इनमें मछलियाँ (343), जलथलचारी (50), सरीसृप (170), अकेशरुकी (1,355), पक्षियाँ (1,037) तथा स्तनपायी (497) शामिल हैं।

जैव–विविधता क्षरण के कारण – जैव–विविधता क्षरण के विभिन्न कारण हैं जिनमें आवास विनाश, आवास विखण्डन, पर्यावरण प्रदूषण, विदेशी मूल के पौधों का आक्रमण, अति–शोषण, वन्य–जीवों का शिकार, वनविनाश, अति–चराई, बीमारी, चिड़ियाघर तथा शोध हेतु प्रजातियों का उपयोग नाशीजीवों तथा परभक्षियों का नियंत्रण, प्रतियोगी अथवा परभक्षी प्रजातियों का प्रवेश प्रमुख है–

1. **आवास विनाश–** मानव जनसंख्या वृद्धि एवं मानव गतिविधियाँ आवास विनाश का प्रमुख कारण हैं। आवास की क्षति वर्तमान में अकशेरुकी जीवों के विलुप्ति का एक प्रमुख कारण है। बहुत से देशों में विशेषकर द्वीपों पर जब मानव जनसंख्या घनत्व

में वृद्धि होती है तो अधिकतर प्राकृतिक आवास नष्ट हो जाते हैं। दुनिया के 61 में से 41 प्राचीन विश्व उष्णकटिबंधीय देशों में 50 प्रतिशत से ज्यादा वन्य–जीवों के आवास नष्ट हो चुके हैं। ज्यादातर स्थितियों में आवास विनाश के प्रमुख कारक औद्योगिक तथा वाणिज्यिक गतिविधियाँ हैं जिनका संबंध वैश्विक अर्थव्यवस्था जैसे– खनन, पशु पालन, कृषि, वानिकी, बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं की स्थापना आदि से है। वर्षा वन, उष्णकटिबंधीय शुष्क वन, नमभूमियाँ, ज्वारीय वन तथा घास के मैदान जोखिमग्रस्त आवास हैं।

2. **आवास विखण्डन** – आवास विखण्डन वह प्रक्रिया है जिसमें एक विशाल क्षेत्र का आवास क्षेत्रफल कम हो जाता है और प्रायः दो या अधिक टुकड़ों में बंट जाता है। जब आवास नष्ट हो जाता है तो टुकड़े बहुधा एक दूसरे से अलग–अलग क्षरित अवस्था में प्रकट होते हैं। आवास विखण्डन प्रजातियों के विस्तार तथा स्थापना को सीमित कर देता है, जिससे जैव विविधता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
3. **पर्यावरण प्रदूषण** – बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण जैव–विविधता क्षरण का एक प्रमुख कारण बनता जा रहा है। नाशिजीवनाशक (पेस्टीसाइड), औद्योगिक रसायन तथा अपशिष्ट आदि पर्यावरण प्रदूषण के लिये मुख्यतः उत्तरदायी हैं। नाशिजीवनाशक प्रदूषण के परिणामस्वरूप मृदा के सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों तथा जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त जल वर्षा के बहाव से जब नाशिजीवनाशक जलस्रोतों में पहुँचते हैं तो वहाँ भी सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों तथा जंतुओं को मार देते हैं। परिणामस्वरूप जैव–विविधता का क्षय होता है। नाशिजीवनाशक डी.डी.टी. (डाईक्लोरो डाईफिनाइल ट्राईक्लोरोइथेन) पक्षियों की गिरती आबादी का एक प्रमुख कारण हैं। डी.डी.टी. खाद्य शृंखला के माध्यम से पक्षियों के शरीर में पहुँचता है जहाँ वह इसट्रोजेन नामक हार्मोन की गतिविधि को प्रभावित करता है जिससे अण्डे की खोल कमजोर हो जाती है, परिणामस्वरूप अण्डा समय से पहले फूट जाता है जिससे भ्रूण की मृत्यु हो जाती है। अम्ल वर्षा के कारण नदियों तथा झीलों का अम्लीकरण जलीय जीवों के लिये एक प्रमुख खतरा बनता जा रहा है।
4. **विदेशी मूल की वनस्पतियों का आक्रमण** – विदेशी मूल की वनस्पतियों के आक्रमण के परिणामस्वरूप जैव विविधता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है इसलिये इन्हें 'जैविक प्रदूषक' की संज्ञा दी जाती है। सफल विदेशी मूल की वनस्पति की प्रजाति देसी प्रजातियों को विस्थापित कर उन्हें विलुप्ति के स्तर तक पहुँचा देती हैं। इसके अतिरिक्त वह आवास पर विपरीत प्रभाव डालकर देसी प्रजाति के अस्तित्व के लिये खतरा पैदा कर देती है। भारत में बहुत से विदेशी मूल की वनस्पतियाँ जैसे गाजर घास (पार्थिनियम हिट्रोफोरस), कुर्री (लैंटाना कमरा), काबुली कीकर (प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा) आदि जैव–विविधता क्षरण के प्रमुख कारण साबित हो रहे हैं।
5. **अतिशोषण** – बढ़ती मनव जनसंख्या के कारण जैविक संसाधनों का दोहन भी बढ़ा है। संसाधनों का उपयोग तब ज्यादा बढ़ जाता है जब पूर्व में उपयोग नहीं हुई अथवा स्थानीय उपयोग वाली प्रजाति के लिये वाणिज्यिक बाजार विकसित हो जाता है। अतिशोषण दुनिया के लगभग एक–तिहाई लुप्तप्राय कशेरुकी जीवों के लिये प्रमुख खतरा हैं। बढ़ती ग्रामीण बेरोजगारी, उन्नत शोषण विधियों का विकास तथा अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण ने बहुत सी प्रजातियों को विलुप्ति के शीर्ष पर पहुँचा दिया है। अगर प्रजाति पूरी तरह से समाप्त नहीं होती है तो भी उसकी जनसंख्या उस स्तर तक घट जाती है जहाँ से वह अपना पुनरुत्थान करने में अक्षम होती है।
6. **शिकार** – जन्तुओं का शिकार आमतौर से दांत, सींग, खाल, कस्तूरी आदि` लिये किया जाता है। अंधाधुंध शिकार के कारण जानवरों की बहुत सी प्रजातियाँ लुप्तप्राय

जन्तुओं की श्रेणी में पहुँच चुकी है। असम राज्य में एक सींग वाले गैण्डे की जनसंख्या में अभूतपूर्व गिरावट दर्ज की गयी है क्योंकि इसका शिकार इसकी सींग के लिये किया जाता है जिसका उपयोग कामोत्तेजक दवाओं के निर्माण में होता है। इसी प्रकार पूर्वोत्तर राज्यों विशेषकर मणिपुर में चीरू नामक जानवर का शिकार उसकी खाल के लिये किया जाता है जिससे शाहतूस शाल का निर्माण होता है। बाघ, तेन्दुआ, चिंकारा, अजगर, कृष्ण मृग तथा मगरमच्छ का शिकार भी खाल के लिये किया जाता है। हाथियों का शिकार दाँत के लिये किया जाता है जबकि बारहसिंगा का शिकार सींग के लिये किया जाता है। कस्तूरी मृग का शिकार कस्तूरी के लिये किया जाता है।

7. **वन विनाश** – विकास कार्यों तथा कृषि के विस्तार के कारण उष्णकटिबंधीय देशों में जंगलों को बड़े पैमाने पर नष्ट किया गया है जिसके परिणामस्वरूप उष्णकटिबंधीय वनों में जैव–विविधता का क्षरण हुआ है। उष्णकटिबंधीय देशों में आदिवासियों द्वारा की जाने वाली झूम कृषि (स्थानान्तरी कृषि) भी जैव–विविधता क्षरण का एक प्रमुख कारण रही है। भारत के आदिवासी बहुत पूर्वोत्तर राज्यों में झूम कृषि के कारण वनों के क्षेत्रफल में अभूतपूर्व गिरावट दर्ज की गयी है।

जैव–विविधता का संरक्षण – जैव विविधता संरक्षण का आशय जैविक संसाधनों के प्रबंधन से है जिससे उनके व्यापक उपयोग के साथ–साथ उनकी गुणवत्ता भी बनी रहे। चूँकि जैव–विविधता मानव सभ्यता के विकास की स्तम्भ है इसलिये इसका संरक्षण अति आवश्यक है। जैव–विविधता हमारे भोजन, कपड़ा, औषधीय, ईंधन आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जैव–विविधता पारिस्थितिक संतुलन को बनाये रखने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त यह प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा आदि से राहत प्रदान करती है। वास्तव में जैव–विविधता प्रकृति की स्वभाविक संपत्ति है और इसका क्षय एक प्रकार से प्रकृति का क्षय है। अतः प्रकृति को नष्ट होने से बचाने के लिये जैव–विविधता को संरक्षण प्रदान करना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

जोखिमग्रस्त प्रजातियाँ – मेस तथा स्टुअर्ट एवं अन्तरराष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संघ (आई.यू.सी.एन. 1994 डी) ने वनस्पतियों एवं जन्तुओं की कम होती प्रजातियों को संरक्षण हेतु निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा है–

1. असहाय प्रजाति – वे प्रजातियाँ जो कि संकटग्रस्त प्रजातियाँ बन सकती हैं अगर वर्तमान कारक का प्रकोप जारी रहा जो इनकी जनसंख्या के गिरावट के लिये जिम्मेदार है। भारत में भालू (स्लाथ बीयर) इसका उदाहरण है।
2. दुर्लभ प्रजाति – यह वे प्रजातियाँ होती हैं जिनकी संख्या कम होने के कारण उनकी विलुप्ति का खतरा बना रहता है। भारत में शेर (एशियाटिक लायन) इसका उदाहरण है।
3. अनिश्चित प्रजाति– वे प्रजातियाँ जिनकी विलुप्ति का खतरा है लेकिन कारण अज्ञात हैं। मेक्सिकन प्रेरी कुत्ता इसका उदाहरण है।
4. संकटग्रस्त प्रजाति – वे प्रजातियाँ जिनके विलुप्ति का निकट भविष्य में खतरा है। इन प्रजातियों की जनसंख्या गम्भीर स्तर तक घट चुकी है तथा इनके प्राकृतिक आवास भी बुरी तरह घट चुके हैं। गंगा डॉल्फिन तथा नीला ह्वेल इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
5. गंभीर संकटग्रस्त प्रजाति – वे प्रजातियाँ जो निकट भविष्य में जंगली अवस्था में विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हो। भारत में ग्रेट इण्डियन बस्टर्ड (सोहन चिड़िया) तथा गंगा शार्क इसके उदाहरण हैं।

6. विलुप्त प्रजाति – वे प्रजातियाँ जिनका अस्तित्व पृथ्वी से समाप्त हो चुका है। डाइनासोर तथा डोडो इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

विश्व संरक्षण रणनीति ने जैव–विविधता संरक्षण के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये हैं–

1. उन प्रजातियों के संरक्षण का प्रयास होना चाहिए जो कि संकटग्रस्त हैं।
2. विलुप्ति पर रोक के लिये उचित योजना तथा प्रबंधन की आवश्यकता।
3. खाद्य फसलों, चारा पौधों, मवेशियों, जानवरों तथा उनके जंगली रिश्तेदारों को संरक्षित किया जाना चाहिए।
4. प्रत्येक देश की वन्य प्रजातियों के आवास को चिंहित कर उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए।
5. उन आवासों को सुरक्षा प्रदान करना चाहिए जहाँ प्रजातियाँ भोजन, प्रजनन तथा बच्चों का पालन–पोषण करती हैं।

जैव–विविधता संरक्षण की विधियाँ – जैव–विविधता संरक्षण की मुख्यतः दो विधियाँ होती हैं जिन्हें यथास्थल संरक्षण तथा बहिःस्थल संरक्षण के नाम से जाना जाता है। जो कि निम्नवत हैं–

1. **यथास्थल संरक्षण –** इस विधि के अंतर्गत प्रजाति का संरक्षण उसके प्राकृतिक आवास तथा मानव द्वारा निर्मित पारितंत्र में किया जाता है जहाँ वह पायी जाती है। इस विधि में विभिन्न श्रेणियों के सुरक्षित क्षेत्रों का प्रबंधन विभिन्न उद्देश्यों से समाज के लाभ हेतु किया जाता है। सुरक्षित क्षेत्रों में राष्ट्रीय पार्क, अभ्यारण्य तथा जैवमण्डल रिजर्व आदि प्रमुख हैं। राष्ट्रीय पार्क की स्थापना का मुख्य उद्देश्य वन्य–जीवन को संरक्षण प्रदान करना होता है।
2. **बहिःस्थल संरक्षण** – यह संरक्षण कि वह विधि है जिसमें प्रजातियों का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवास के बाहर जैसे वानस्पतिक वाटिकाओं जन्तुशालाओं, आनुवंशिक संसाधन केन्द्रों, संवर्धन संग्रह आदि स्थानों पर किया जाता है। इस विधि द्वारा पौधों का संरक्षण सुगमता से किया जा सकता है। इस विधि में बीज बैंक, वानस्पतिक वाटिका, ऊतक संवर्धन तथा आनुवंशिक अभियान्त्रिकी की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

निष्कर्ष – मानव सभ्यता के विकास की धुरी जैव–विविधता मुख्यतः आवास विनाश, आवास विखण्डन, पर्यावरण प्रदूषण, विदेशी मूल के वनस्पतियों के आक्रमण, अतिशोषण, वन्य–जीवों का शिकार, वनविनाश, अति–चराई, बीमारी आदि के कारण खतरे में है। अतः पारिस्थितिक संतुलन, मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति एवं प्राकृतिक आपदाओं (बाढ़, सूखा, भू–स्खलन आदि) से मुक्ति के लिये जैव–विविधता का संरक्षण आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, सविन्द्र (2011), पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 571 से 578।
2. विल्सन, ई.ओ. एवं पिटर्स, एफ.एम. (1988) बायोडाइवर्सिटी (संपादित), नेशनल एकेडमी प्रेस, वाशिंगटन डी.सी.।
3. हेवुड, वी.एच. एवं वाटसन, आर.टी. (1995) ग्लोबल बायोडाइवर्सिटी असेस्मेन्ट (संपादित), यूनाइटेड नेशन इन्वायरन्मेण्ट प्रोग्राम, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रीज, यू.के.।
4. भरुचा, ई. (2005) टेक्स्टबुक ऑफ एनवायरनमेन्टल स्टडीज, यूनिवर्सिटी प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इण्डिया।

5. शर्मा, पी.डी. (2004) इकोलॉजी एण्ड एनवायरन्मेन्ट, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, इण्डिया।
6. सिंह, ए. (2007) वोरहेविया डिफ्यूजाः एन ओवर–ऐक्सप्लॉयटेड प्लाण्ट ऑफ मेडिसिनल इमपॉरटेन्स इन रूरल एरियाज ऑफ ईस्टर्न उत्तर प्रदेश, करेण्ट साइन्स, खण्ड–93, अक–4. पृ. 446।
7. मेस, जी.एम. तथा स्टुअर्ट, एस. (1994), ड्राफ्ट आई यू सी एन रेड लिस्ट कटेगरीज, वरजन 2.2 स्पीसीज 21/22ः मु.पृ. 13–14।
8. आई यू सी एन (1994 डी) आई यू सी एन रेड लिस्ट कटेगरीज, आई यू सी एन, इंग्लैण्ड।

SHRADHA EDUCATIONAL ACADEMY